साठ वर्ष पूरे हुए

(विपश्यना पत्रिका, 2 फरवरी 84)

जन्म से मृत्यु तक की दौड़ के साठ वर्ष पूरे हुए । आगे और न जाने कितने बाकी हैं । पीछे की ओर मुड़ कर सिंहावलोकन करता हूं तो जीवन के अनेक खट्टे-मीठे अनुभवों के बावजूद, उतार-चढ़ाव के भाटे-ज्वार के बावजूद, पतझड़-बसंत की विविध रंगीनियों के बावजूद मन सुखद संतोष का ही अहसास करता है ।

मानसपट पर अनेक चित्र उभर कर आते हैं जिनमें से कुछ बहुत ही स्पष्ट हैं, उजागर हैं ।

म्यंमा (बर्मा) की पुरानी राजधानी रत्नपुंज मांडले नगरी में जन्मा हुआ एक बालक । 7-8 वर्ष की उम्र । 72-73 वर्षीय पितामह की छत्रछाया में पलता है । बाबा की जबान पर राजस्थानी दोहों का अक्षय भंडार । समय-समय पर उनके मुँह से कोई एक मर्म स्पर्शी दोहा फूट पड़ता है । मन पर गहरी छाप पड़ती है ।

सुबह-सुबह सफेद धोती-कुर्ता पहन कर, गुलाबी राजस्थानी पगड़ी सिर पर बांध कर जब बाहर जाने के लिए तैयार होते तो अक्सर यह बालक भी साथ हो लेता । बाबा अपनी लाठी पकड़ते हुए एक दोहा गाते । बहुत करुण कंठ से गाते -

चल सुंदर मिंदर चलां, तुझ बिन चल्यो न जाय ।
माता दी आसीसड़ी, बै दिन पूग्या आय ॥

कभी उस बालक को दोहे का अर्थ भी समझाते हुए कहते –

अरे, मैं इस लाठी से कहता हूं कि ऐ सुंदरी लाठी ! चल मंदिर चलें !
अब तो शरीर दुर्बल हो गया । तेरे सहारे बिना चल भी नहीं सकता ।
बचपन में मां ने आशीषें दी थी 'बूढ़ो डोकरो होए !"
मां की आशीषें फलीभूत हुई । देखो, बूढ़ा डोकरा हो गया न !

और एक बेबसी की हँसी हँसते ।

एक बार बूढ़े बाबा बीमार पड़े । चंद दिनों में ही हालत बिगड़ी । बिस्तर पर लेटे-लेटे एक दोहा फूट पड़ा ।

पात झड़न्ता यूं कह्या, सुन तरुवर बनराय ।
इबका बिछुड़्या ना मिलां, दूर पड़ांगा जाय ॥

कितनी बेबसी है ! पत्ते जर्जरित होते हैं तो न चाहते हुए भी झड़ ही जाते हैं । प्यारे पेड़ से बिछोह हो ही जाता है और फिर मिलन नहीं होता । कितने असहाय हैं !

जरा है, मृत्यु है - अनित्य है । इन पर अपना कोई अधिकार नहीं - अनात्म है । और यह बेबसी - दुःख है । अनित्य, अनात्म, दुःख । अनित्य, अनात्म, दुःख । शुद्ध धर्मभरा दोहा ।

एक रात घर के लोग देर तक जागते रहे । यह नन्हा-सा बालक भी बाबा की खाट के पास बैठा रहा । प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व बाबा की हालत ज्यादा बिगड़ी । लोगों ने खाट से उठा कर धरती पर लिटा दिया । बालक को दूर ले

जाने की कोशिश की । पर वह हठपूर्वक बैठा ही रहा । अपने बाबा की ओर एकटक देखता रहा । अब सांस रुक-रुक कर आने लगी । बाबा ने आँखें खोली । सबने झुक कर नमन किया । बालक ने भी नमन किया । बाबा मुस्काराए । हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया और जो सांस छोड़ी वह लौट कर वापस नहीं आयी । बाबा का हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में उठा ही रह गया । लोगों ने अर्थी तैयार की । बाबा के शरीर को सजी हुई अर्थी पर लेटाया गया । कीमती दुशाला ओढ़ाया गया । पर हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में ही उठा रहा ।

'राम नाम सत्य है। सत्य बोले मुक्ति है । " लोग अर्थी लेकर चल पड़े ।

नन्हें बच्चों को श्मशान भूमि नहीं ले जाते । पर बालक नहीं माना । बाबा को विदाई देने श्मशान भूमि तक गया ही । चिता तैयार की गयी । बाबा का कफन-लिपटा शरीर चिता पर रख दिया गया । हाथ अब भी आशीर्वाद की मुद्रा में ही उठा था । चिता जल उठी । कुछ देर के बाद जो राख बची वह समीप बहती हुई इरावदी गंगा में प्रवाहित कर दी गयी । बाबा को विदा कर सब घर लौट आये । बाबा का आशीर्वाद भरा अभय मुद्रा वाला हाथ बालक के जीवन का संबल बन गया ।

लगभग 7 वर्ष की उम्र में बालक ने इतनी समीप से जरा का दर्शन किया, व्याधि का दर्शन किया, मृत्यु का दर्शन किया और इन तीनों में से मुस्कारा कर गुजरते हुए एक संत का दर्शन किया ।

बालक के मन-मानस पर पड़ा हुआ शुद्ध धर्म का यह बीज 24 वर्षों के बाद एक नन्हें से पौधे के रूप में उगा जो कि कालांतर में एक विशाल वृक्ष के रूप में फैल गया ।

बालक किशोर अवस्था की ओर बढ़ने लगा । सारे घर का वातावरण बहुत सात्विक । पिता शिव के अनन्य भक्त । किशोर नित्य शिवमहिम्न स्तोत्र और शिव-तांडव स्तोत्र का सस्वर पाठ करने लगा । माता कृष्ण की अनन्य भक्त । किशोर नित्य गोपाल सहस्रनाम और विष्णु सहस्रनाम का पाठ करने लगा । कुछ दिनों के बाद गीता का पाठ भी करने लगा ! घर के ठाकुरद्वारे में पिता के साथ नित्य पूजा में बहुत रस लेने लगा ।

प्राथमिक शिक्षा के गुरु अत्यंत कोमल हृदय भक्त । सुबह-सुबह सूर, तुलसी, मीरा का कोई पद मधुर कंठ से गाते तो गाते-गाते द्रवित हो जाते । किशोर तन्मय होकर सुनता तो उसका भी हृदय पिघल जाता । आंखों से अश्रुधारा बहने लगती । उनके साथ कीर्तन करता तो उस में भी तन्मय हो जाता । भाव-विभोर हो जाता ।

सारे परिवार पर श्री जयदयालजी गोयन्का और श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार का गहरा प्रभाव । गीताप्रेस गोरखपुर का सारा साहित्य घर पर आता । यह किशोर भक्तों की कथाएं बड़े चाव से पढ़ता । भक्त बालकों की कथाएं पढ़ते हुए अजस्र अश्रुधारा बहने लगती । कुछ और बढ़ा तो राम-चरित मानस में बहुत रस आने लगा । उसकी अनेक चौपाइयां किशोर के हृदय को द्रवित करने लगीं । भक्ति की इस मधुर रसधारा में जीवन अत्यंत सरस हो उठा ।

घर के पड़ोस में आर्य समाज का मंदिर था । किशोर 10-12 वर्ष का हुआ तो हर रविवार को वहां भी जाने लगा । समाज-सुधार की अनेक अच्छी बातों का मन पर बहुत गहरा असर पड़ा । तीसरी कक्षा से दसवीं कक्षा तक पढ़ाई स्थानीय खालसा स्कूल में हुई । अधिकांश सहपाठी और अध्यापक सिक्ख सरदार थे । सुबह की पढ़ाई 'एकोंकार सत्तनाम" के पावन पाठ से शुरू होती

। समय-समय पर समीप के गुरुद्वारे भी जाता, जहां गुरुवाणी का पाठ होता। नानक, कबीर, दादू और अन्य संतों की वाणी किशोर का मन मुग्ध कर देती।

ऐसे बहुरंगी सरस आध्यात्मिक वातावरण में किशोर अवस्था के दिन कटे। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण स्कूल की हर कक्षा में प्रथम आता रहा। हाई स्कूल की परीक्षा में म्यंमा के हजारों परीक्षार्थियों में प्रथम 11 में से एक होने के कारण सरकार ने छात्रवृत्ति दी। पर पारिवारिक कारणों से कालेज की पढ़ाई नहीं उपलब्ध हुई।

कुछ सोलह वर्ष की अवस्था में ही पैत्रिक धंधे में जुट गया और अठारह वर्ष की कुमार अवस्था में विवाह हो गया। भक्ति में द्रवीभूत होते हुए भी कुमार अवस्था से ही वासना का भूत सिर पर सवार हुआ जो कि अब युवावस्था में और तीव्र हो उठा। इसके साथ-साथ क्रोध का पिशाच हावी होने लगा। इन दोनों ने बहुत व्याकुल बनाया। अठारह वर्ष की उम्र में ही द्वितीय महायुद्ध की वजह से वर्ष म्यंमा छोड़ कर दक्षिण भारत में बिताने पड़े। इस छोटी उम्र में प्राप्त व्यापारिक सफलता ने अहंभाव के दानव को बलशाली बनाया। युद्ध समाप्त होते ही म्यंमा लौट आया और मध्य बीसी की युवावस्था में ही व्यवसाय में आशातीत सफलता मिली। स्थानीय राजस्थानी समाज का ही नहीं, म्यंमा के भारतीय समाज का अग्रणी बना। विभिन्न धार्मिक, शैक्षणिक, व्यापारिक, औद्योगिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और समाजसेवी संस्थाओं में प्रमुख पद, प्रतिष्ठा, सम्मान मिलने लगे तो अहंभाव का क्या ठिकाना ? और उसके साथ-साथ काम और क्रोध भी बढ़ते ही गये। इन तीनों दुश्मनों ने बुरी तरह आक्रांत किया।

भक्तिभाव कम नहीं हुआ । पहले से अधिक तीव्र ही हुआ । हिंदी साहित्य सम्मेलन की साहित्य - गोष्ठियों में सूर, तुलसी, मीरा आदि की जयंतियां मनाते हुए यह युवक स्वयं भी भक्तिभाव में विभोर हो उठता और श्रोतामंडली को भी विभोर कर देता । घर पर अपने ईष्टदेव कृष्ण की भक्ति में देर तक भजन गाता, द्रवीभूत होता । अपने काम, क्रोध, अहंभाव को याद कर आंसू बहाता । बहुत करुणा-विगलित कंठ से अनुनय करता, विनय करता-

"प्रभुजी मेरे अवगुण चित न धरो !"

बहुत चाहता कि विकारों से छुटकारा हो जाय, पर वे बढ़ते ही जाते । स्वयं भी दुःखी रहता, औरों को भी दुःखी बनाता ।

इन्हीं दिनों गीता और उपनिषदों का गहराई से अध्ययन करने का अवसर मिला । वेदांत की बारीकियों पर प्रभावशाली भाषण देता । गीता के स्थितप्रज्ञ और अनासक्तिभाव का विश्लेषण करता । श्रोता मुग्ध हो जाते । परंतु बहुधा घर लौट कर अकेले में देर तक आंसू बहाता, दुःखी होता - मुझ में स्थितप्रज्ञता का, अनासक्ति का नामोनिशान नहीं । विकारों का पुंज । न आर्द्र-द्रवीभूत करने वाली भक्ति ही इन्हें निकाल पायी और न बाल की खाल खैंचने में समर्थ दार्शनिक बुद्धिविलास का वैभव ही । दिन पर दिन विकार बढ़ते ही गये । व्याकुलता बढ़ती ही गयी ।

एक ओर विपुल धन, वैभव, ऐश्वर्य, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा और दूसरी ओर यह असीम आंतरिक व्याकुलता । ऐसी दयनीय स्थिति में बड़े सौभाग्य से एकतीस वर्ष के इस दुखियारे युवक का परम गृहस्थ संत सयाजी ऊ बा खिन से संपर्क हुआ । शुद्ध धर्म का मंगल वरदान मिला । विपश्यना की

कल्याणकारिणी साधना मिली । अहं की खोल तोड़ कर चूजा बाहर आया । अविद्या की खोल टूटने पर एक सर्वथा नए व्यक्ति का जन्म हुआ । मानव-जीवन सार्थक हुआ ! धन्य हुआ ! पहले ही शिविर में इतना लाभ हुआ कि जिसका कोई माप नहीं । दो-चार वर्षों में तो न केवल स्वयं को, बल्कि समीपवर्ती परिजनों को भी यह सुखद परिवर्तन प्रभावित करने लगा । धीरे-धीरे सारे परिवार में विपश्यना की धर्म - गंगा बहने लगी । पारिवारिक जीवन असीम सुख-शांति से भर गया ।

धर्म का सार हाथ लगा । निकम्मे भावावेश से सदा के लिए छुटकारा मिला । निरर्थक बुद्धि-विलास से सर्वथा मुक्ति मिली । मिथ्या दार्शनिक मान्यताओं का जंजाल छिन्न-भिन्न हुआ । सांप्रदायिक अहमन्यता चूर-चूर हो गयी । शुद्ध धर्म की निर्मल चांदनी जीवन के हर क्षेत्र में छाने लगी । कामवासना की जड़ें उखड़ने लगीं । क्रोध की अग्नि शांत होने लगी । अंतर्मन की तलस्पर्शी गहराइयों तक विकारों की उत्पत्ति का स्रोत पकड़ में आ गया । आरंभ होते ही विकारों का संवर कर लेने की कल्याणी कुंजी मिल गयी । जीवन में सही सुख-शांति समाने लगी ।

चौदह वर्ष की लंबी अवधि उस महान संत की शीतल-सुखद छाया में बीती । इस बीच लोकीय जीवन में अनेक परिवर्तन आये । व्यापार-उद्योग में अपूर्व वृद्धि हुई । भौतिक समृद्धि के साथ-साथ सामाजिक और राजकीय मान-प्रतिष्ठा बढ़ी । मन की समता बनी रही । फिर यकायक एक अवसर ऐसा आया कि सारे व्यापार-उद्योग हाथ से छूट गये । उनका राष्ट्रीयकरण हो गया । पर धर्म का अपूर्व आनुभाव ! अपूर्व कृपा ! चित्त की समता में कोई अंतर नहीं आया । राज्य के प्रति जरा भी द्वेष नहीं, दुर्भाव नहीं । सद्भावना ही

सद्भावना ! अच्छा हुआ बोझ हटा । अब सद्धर्म के परियत्ति और पटिपत्ति [सैद्धांतिक और व्यावहारिक] दोनों पक्षों को प्रबल करने का अच्छा अवसर मिला । मन प्रसन्नता-विभोर हो उठा । और सचमुच समय का बहुत अच्छा सदुपयोग हुआ। ऐसा न हुआ होता तो इतने लंबे अरसे तक उस महान संत का सुखद सान्निध्य कैसे उपलब्ध होता ? सचमुच जीवन धन्यता से भर उठा ।

और फिर स्मृतिपटल पर जीवन के एक और महत्त्वपूर्ण दौर का चित्र उभरता है । पैंतालीस वर्ष का यह प्रौढ़ व्यक्ति सद्गुरु का असीम मंगल-आशीर्वाद लेकर पुरुखों की पुण्य भूमि भारत आता है । अनेक प्रारंभिक कठिनाइयों के बावजूद इस धर्म-देश में धर्म - गंगा प्रवाहमान हो उठती है । अनेक लोगों का सहयोग मिलता है । हजारों लोगों का यह नया विपश्यना परिवार । जैसे अनेक जन्मों के स्वजन-परिजन धर्मसेवा के लिए साथ आ जुटे हों । भारत को अपनी खोयी हुई अनुपम आध्यात्म संपदा पुनः प्राप्त करने का मार्ग खुलता है ।

साठ वर्ष वाले इस मील के पत्थर को पार करते हुए मन भविष्य की ओर देखता है । सामने शुद्ध धर्म का राजपथ खुला हुआ है । लक्ष्य स्पष्ट है । पथ का हर कदम लक्ष्य की ओर ले जाने वाला है । आशुफलदायी है ।

और मन में यह धर्म-कामना जागती है कि भारत की यह पुरातन अनमोल निधि, जिसे जन्मभूमि म्यंमा ने सदियों सहेज कर रखा, वह भारतवासियों को मुबारक हो ! सारे विश्व के लोगों को मुबारक हो ! इस देश की नयी पीढ़ी देश की अनुत्तर, अनुपम धरोहर - निधि को सँभालें और पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह कल्याणकारिणी विद्या केवल भारत के ही नहीं, बल्कि सारे विश्व के दुखियारों का कल्याण करती रहे ।